इकाई 12 जापान : पश्चिम के विरुद्ध औपनिवेशिक विरोधी आंदोलनों को समर्थन

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 एशिया के बारे में जापानी विचार

12.2.1 नस्ल और सभ्यता-प्रसार लक्ष्य (Civilizing Mission)

12.2.2 एशियाई एकता को प्रोत्साहन देने के लिए कार्यरत जापानी संस्थाएँ

12.3 एशिया से छात्रों, राष्ट्रवादियों और व्यापारियों का जापान आगमन

12.3.1 जापान में चीनी : एक गणतंत्रीय चीन की दिशा में कार्य

12.3.2 मांचूकुओ : अखिल एशियावाद की प्रयोगशाला

12.4 चीन और वैधता प्राप्त करने के जापानी साम्राज्य के प्रयास

12.4.1 वांग जींगवेई और जियांग जिशी

12.4.2 वांग जींगवेई का जापानी सेना के साथ सहयोग करना

12.4.3 क्या वांग जींगवेई देशद्रोही था?

12.5 जापान का दक्षिण-पूर्व एशिया और भारत में आगे बढ़ना

12.5.1 बर्मी राष्ट्रवाद और जापानी समर्थन

12.5.2 जापान द्वारा एशिया में अपनी नीतियों को संयमित करना

12.6 जापान और इंडियन नेशनल आर्मी (आजाद हिंद फौज)

12.6.1 आई.एन.ए. द्वारा रंगून में मुख्यालय की स्थापना

12.6.2 आई.एन.ए. तथा लालकिले के मुकदमें

12.7 इंडोनेशिया पर जापानी कब्ज़ा

12.7.1 जापानी आधिपत्य : अधिकारियों द्वारा स्थानीय संस्कृति को प्रोत्साहन

12.7.2 जापानियों की मुक्तिदाता के रूप में इंडोनेशियावासियों की हताशा

12.8 सारांश

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

यह इकाई आपको निम्नलिखित को समझने में सहायता करेगी :

- पड़ोसी एशियाई देशों से जापान का सम्बंध,
- जापानी राज्य में, नस्ल, राष्ट्रवाद और सभ्यता प्रसार लक्ष्य के विचार,
- जापानी साम्राज्यवादी महत्वकाक्षांओं को वैध बनाने के लिए अखिल एशियावाद की भूमिका, और
- पश्चिमी शक्तियों के खिलाफ राष्ट्रीय आंदोलनों का समर्थन करने में जापानी भूमिका।

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम देखेंगे कि कैसे जापानियों ने एक औपनिवेशिक साम्राज्य का निर्माण करते हुए पश्चिमी उपनिवेशवाद के खिलाफ भी तर्क दिया और स्वयं को एशिया के मुक्तिदाता के रूप में पेश किया। हम नस्ल, अखिल एशियावाद के बारे में कुछ प्रमुख विचारों की जाँच-पड़ताल करेंगे और यह भी देखेंगे कि कैसे एक सह-समृद्धि क्षेत्र के निर्माण के लिए सरकार की नीतियों को प्रोत्साहन देने के लिए संस्थाओं की स्थापना की गई और अंत में, जापानियों के कब्ज़े वाले देशों के उदाहरणों, जैसे चीन, बर्मा और इंडोनेशिया के लोग कैसे जापानियों के प्रति प्रतिक्रिया दिखाते हैं, उस पर भी विचार करेंगे।

हम उन मामलों को देखेंगे जहाँ स्थानीय नेता, वांग जींगवेई, सुभाषचंद्र बोस और ओंग सान ने जापानियों के साथ इस विश्वास के साथ काम किया कि यह उनके देश के लिए अच्छा था। हम यह देखेंगे कि एशिया के मुक्तिदाता के रूप में क्या जापानी समर्थन पाने में सफल रहे या नहीं। एशिया के मुक्तिदाता के रूप में जापानी अपील की शक्ति इस तथ्य में निहित है कि वे और जिन देशों पर उन्होंने कब्ज़ा किया, दोनों ही पश्चिमी शक्तियों से लड़ रहे थे। एशिया के उपनिवेशित लोगों ने देखा कि यह उनकी जापानियों के साथ समान स्थिति थी।

इसके अलावा जापानियों द्वारा रूस की पराजय से शुरू होने वाली पश्चिमी शक्तियों पर जापानियों की जीत ने पश्चिमी श्रेष्ठता के मिथक को तोड़ दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के पहले से और युद्ध के दौरान, जापान द्वारा ब्रिटेन, फ्रांस, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-पूर्व एशिया में डचों की पराजय ने पश्चिमी साम्राज्यवाद के विकल्प के रूप में जापान की स्थिति की पुष्टि की। एशियाई एकता के लिए जापानी तर्क साम्राज्यवाद और वैश्विक पूँजी की आलोचना करते थे, लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक प्रथाओं की आलोचना करने में नरम थे। इसमें उन देशों में उभरते मध्यम वर्गों के लिए एक अपील थी जिन पर उन्होंने कब्ज़ा किया था।

अंत में, एशियाई एकता के लिए आह्वान एक मिथक पाया गया और जापान अन्य औपनिवेशिक शक्तियों से बहुत अलग नहीं था।

12.2 एशिया के बारे में जापानी विचार

एशियाई एकता का विचार कई पूर्व विचारों से प्रेरित था और समय के साथ बदल गया। शुरुआती वर्षों में यह मुख्य रूप से एशियाई एकता के लिए एक आदर्शवादी आह्वान था, प्रायः इसका अर्थ जापान, कोरिया और चीन के बीच एकता स्थापित कर पश्चिमी शक्तियों और उनके द्वारा लाई गई संस्कृति का सामना करना था। तर्क यह था कि उनकी संस्कृतियाँ संकट में थी और उनमें पश्चिम से मुकाबला करने की व्यक्तिगत रूप से शक्ति का अभाव था। अतः उन्हें पश्चिम से लड़ने के लिए परस्पर सहयोगी बनना पड़ा। अनेक जापानी जापान को इस तरह के गठबंधन के स्वभाविक नेता के रूप में देखते थे। जापान को उपनिवेश नहीं बनाया गया था, उसने पश्चिमी शक्तियों से लड़ाइयाँ लड़ी थी और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पश्चिमी शक्तियों के साथ समानता हासिल कर ली थी।

इन विचारों और नीतियों को अखिल एशियावाद या एशियावाद (अजियाशुगी) के नाम के तहत, जैसा कि जापान में जाना जाता है, वर्गीकृत किया गया है। यह उपनिवेश विरोधी आंदोलनों का समर्थन करने के लिए एक प्रमुख तर्क बन गया।

यह तर्क दिया गया कि जापान एशिया का एक भाग था और केवल एशियाई देशों के साथ मिलकर जापान पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध कर सकता था। पाश्चात्य संस्कृति के दल-दल में फंसने के खतरे और सभी स्वदेशी तत्वों को गवाँ देने का खतरा इस प्रकार की सोच के लिए एक प्रमुख प्रेरणा थी। एक अन्य प्रमुख विचार यह था कि जापान चूंकि वह कभी उपनिवेशित नहीं हुआ था, उसने एशियाई संस्कृति के मुख्य तत्वों को संरक्षित किया था और इसलिए अन्य देशों का नेतृत्व करने के लिए सबसे उपयुक्त था। यह एक व्यापक चरित्र-चित्रण है और यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि इन विचारों के कई सूक्ष्म संस्करण थे कि जापान को एश्यिाई देशों के साथ क्यों सहयोग करना चाहिए।

12.2.1 नस्ल और सभ्यता-प्रसार लक्ष्य (Civilizing Mission)

साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक शासन को न्यायोचित ठहराने के तर्क पश्चिमी शक्तियों द्वारा दिय गये सभ्यता प्रसार लक्ष्य के तर्कों के समान थे। इस सभ्यता प्रसार मिशन की बुनियाद में आधुनिक नस्लीय वर्गीकरण प्रणालियाँ थी जो कुछ लोगों को अविकसित या यहाँ तक कि उप-मानव के रूप में परिभाषित करती थी। यह तथाकथित 'सभ्य और श्रेष्ठ नस्लों' का अधिकार और दायित्व बन गया कि इन 'निम्नतर' लोगों को सिखाया जाए।

नस्लीय समानता का विचार जापान के स्वयं के लिए समानता की माँग करने का तरीका था। मनुष्यों को अलग-अलग नस्लों में विभाजित करने का विचार और कैसे यह अंतर उनकी बुद्धिमत्ता और सभ्यता के स्तर को चिह्नित करता था, यह एक आधुनिक अवधारणा थी जो 1880 के दशक में जापान में आई थी। कोरियाई, ताइवानी, चीनी और अन्य एशियाई लोगों को 'अन्य मानना' केवल नस्ल के विचार के इर्द-गिर्द नहीं था, हालांकि इस विचार ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एशियाई लोगों को 'अन्य मानना' कई तरह की रणनीतियों के माध्यम से सभ्यता, संस्कृति और विकास के विचारों से प्रेरित था। जापानी सभ्यता की सामंजस्यपूर्ण प्रकृति और एशियाईयों के साथ सांझा समानताओं पर बल देते हुए इन विचारों का उपयोग जापान की श्रेष्ठता को रेखांकित करने के लिए किया गया था।

नस्ल के विचार को समान रूप से एक ही तरीके से स्वीकार नहीं किया गया था। कुछ विद्वानों जैसे *शिममेई मा सामिचि* (1898-1984) और काडा तेत्सुजी (1895-1964) ने नस्लीय श्रेष्ठता के विचार को खारिज कर दिया और तर्क दिया कि जापान को एशिया का नेतृत्व करना चाहिए क्योंकि यह सबसे अधिक विकसित था। वास्तव में, 1930-1940 के दशकों में अराजकतावादी कवि और लेखक, ताकामुरा इत्सु (1894-1964), जिन्होंने एशियाई विस्तार का समर्थन किया उन्होंने यह संकेत दिया कि जापान की शक्ति नस्लीय पदानुक्रमों की कमी के कारण थी।

12.2.2 एशियाई एकता को प्रोत्साहन देने के लिए कार्यरत जापानी संस्थाएँ

आमतौर पर सरकारी सहायता और प्रोत्साहन के साथ कई संस्थाओं का गठन किया गया था और यहाँ तक कि जापान ने भी इस विस्तार का समर्थन करने के लिए इस क्षेत्र में अपने नियंत्रण को बढ़ाया। इन संस्थाओं में 1877 में न्यू एशिया शाइनाजिया (1880 में यह कोआकाई बन गया), जिसकी स्थापना ओकुबो तोशिमिशी (1830-1878) और अन्य ने की; 1883 में एशिया सोसाइटी (आजिया कोआकाई); 1898 में प्रिंस कोनो फुमिमारो (1891-1945) के तहत स्थापित ईस्ट एशियन कॉमन कल्चर सोसाइटी, (हिगेशिया दोबुंकाई) प्रमुख थी।

जापान की भूमिका के समर्थन में कई तर्क इस्तेमाल किये गये थे। इन तर्कों में से एक यह था कि विज्ञान की भावना (कगाकु सेइशिन) के आधार पर एक नई बौद्धिक व्यवस्था बनाई

जा सकती है। यह बड़े जातीय समूहों की जिम्मेदारी थी, जिनके ऊपर छोटे व अधिक पिछड़े जातीय समूहों की प्रगति में सहायता करने की ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील स्वरूप होने के कारण जिम्मेदारी थी।

दूसरा मूलभूत आधार यह था कि जापान ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से गैर-पश्चिम देशों के बीच आधुनिकीकरण हासिल करने वाला पहला राष्ट्र था। यह जापानी बुद्धिजीवियों और नीति-निर्माताओं को यह सोचने की अनुमति देता है कि जापान पश्चिम के साथ अपनी समानता दर्शाने के योग्य है, लेकिन साथ ही, यह एशिया पर अपनी श्रेष्ठता प्रकट कर सकता है।

12.3 एशिया से छात्रों, राष्ट्रवादियों और व्यापारियों का जापान आगमन

चीनी और कोरियाई, जापान के निकटतम पड़ोसी थे जिनकी इसके साथ भाषा और सांस्कृतिक समानताएँ थी, उन्होंने अपने स्वयं के देशों के रूपांतरण के लिए जापान को सबसे पहले आधुनिक विश्व के जानकारी की सीख पाने के लिए जापान की तरफ देखा। जापान उनके लिए एक आदर्श बन गया, लेकिन जापान के औपनिवेशिक विस्तार होने से और एशियाई एकता के विचार को जापान द्वारा औपनिवेशिक शासन को तर्कसंगत ठहराने से उनकी आशाओं में खटास आ गई।

मेजी जापान चीन, कोरिया, वियतनाम और अन्य एशियाई देशों के लिए आधुनिक शिक्षा और व्यापार का एक स्रोत बन गया। दक्षिण-एशियाई तुलनात्मक रूप से जापान में कम थे लेकिन बीसवीं शताब्दी के शुरुआती दिनों से वे व्यापारियों और छात्रों के रूप में जापान में गये। कई निर्वासित क्रांतिकारियों ने वहाँ शरण ली और भारतीय स्वतंत्रता के लिए कार्यशील राष्ट्रवादी संगठनों का गठन किया। विद्यार्थी वहाँ सीखने तो आए लेकिन अपने देशों की मुक्ति के लिए संस्थाओं का गठन करते हुए राजनैतिक रूप से सक्रिय हो गये। अनेक जापानी बुद्धिजीवियों और कार्यकर्त्ताओं के सम्पर्क में आए। संस्थाओं जैसे एशियन सोलिडेटरी सोसाइटी में भारतीय, चीनी और जापानी और एशिया के अन्य हिस्सों के लोग राष्ट्रीय स्वतंत्रता और आधुनिक विकास के लिए रणनीतियों पर बहस करने के लिए एक साथ आए। वे एक-दूसरे की समस्याओं के बारे में जानने लगे और यह समझने लगे कि उनके सामने एक साझा संघर्ष था। इन संस्थाओं के अंतर्राष्ट्रीय चरित्र का अर्थ था कि अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध सदस्यों को इस विचार से अवगत कराते थे कि साम्राज्यवाद एक वैश्विक समस्या थी और इसका सामना भी वैश्विक स्तर पर ही किया जाना था।

12.3.1 जापान में चीनी : एक गणतंत्रीय चीन की दिशा में कार्य

बीसवीं शताब्दी के अंत तक बड़ी संख्या में आने वाले चीनियों ने जापान को शिक्षा और अध्ययन करने के लिए एक स्थान के रूप में देखा, लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि यह ऐसी जगह थी जहाँ वे छिंग उत्पीड़न से बच सकते थे और चीन में क्रांति लाने के लिए समूह बनाकर काम कर सकते थे। वे मिलते और वाद-विवाद करते, पत्रिकाएँ और समाचार-पत्र प्रकाशित करते और चीन में अपने क्रांतिकारी कार्य के लिए पैसे जुटाते। जापान ने शास्त्रीय काल में चीनी भाषा को अपनी भाषा लिखने के लिए उधार लिया था, अब चीनियों में जापानियों से उन शब्दों को लिया जो जापानियों ने पश्चिम से सीखी गई अवधारणाओं को लिखने के लिए बनाए थे। यहाँ तक कि क्रांति के लिए आधुनिक चीनी शब्द जापानियों से लिया गया था।

विदेशी छात्रों के अंत:प्रवाह से उस क्षेत्र के लोगों के बीच विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ, जो राज्य द्वारा निर्देशित नहीं था। औपनिवेशिक शक्तियों के महानगरीय केंद्र अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों के साथ उपनिवेश विरोधी संगठनों के जन्म लेने के स्थान बन गये। इंडिया होमरूल सोसाइटी की स्थापना 1905 में लंदन में की गई और 1906 में न्यूयार्क में भारतीयों ने आयरिश राष्ट्रवादियों के साथ संगठित होना और मित्रता करना शुरू कर दिया और 1907 में टोकियो में एशिया सोलिडेटरी सोसाइटी का गठन किया गया जिसने भारतीयों, चीनीयों, जापानियों और दक्षिण-पूर्व एशिया के लोगों को एक साथ लाने में मदद की।

एशियन सोलिडेटरी सोसाइटी के एक चीनी संस्थापक लियू शिपेई ने एक लेख ''ऑन द ट्रेंडस इन एशिया'' (नवंबर 1907) में लिखा जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि आज एशिया अपने साझा सांस्कृतिक अनुभव के कारण एकजुट है; चीनी भाषा जापान, कोरिया और वियतनाम के लिए; भारत से बौद्ध धर्म जो पूरी एशिया में फैल गया है; इस्लाम, जो अरब से फारस और भारत तक फैल गया है; दक्षिण समुद्र (नानयांग) में मुसलमानों और भारतीय ब्राह्मणों की उपस्थिति; और ब्रिटिश और अमेरिकी संस्कृति के साथ भारतीय और फिलीपिंसों का परिचय, ये सभी इसके संकेत थे।

यह इस तरह की एकता की ओर इशारा करता है जो एक सांस्कृतिक या राजनैतिक प्रारूप के आधार पर प्रभुत्व पर आधारित नहीं थी, बल्कि मौजूदा विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान और साझा विश्वासों और अभ्यासों के आधार पर एकता बनाने का प्रयास प्रतीत होता है, और जैसी एकता का अनुभव हमें पश्चिमी आधुनिकता के साझा अनुभवों में भी दिखाई पड़ता है। रेबेका कार्ल का तर्क है कि यह एक उभरती हुई एशिया थी जिसमें ऐतिहासिक गतिशीलता और समकालीन प्रासंगिकता दोनों थी, इसने राज्य पर बल नहीं दिया और लोगों का उत्थान करते हुए और नस्ल और संस्कृति की विविधता को स्वीकार करते हुए एक समकालीन राजनीतिक पहचान स्थापित करने की कोशिश की और इन आदर्शों पर आधारित एक राजनैतिक कार्यक्रम के द्वारा विविधताओं के बीच एक सेतू बनाने का प्रयास किया।

12.3.2 मांचूकुओ : अखिल एशियावाद की प्रयोगशाला

जैसा कि चीन के इतिहासकार प्रसेनजित दुआरा लिखते हैं– मांचूकुओ अखिल एशियनवाद की पहली बड़ी प्रयोगशाला थी, जहाँ अखिल एशियनवाद की भाषण कला को गंभीरता से लिया गया था और कुछ आदर्शवादियों ने चीनियों का दिल जीतकर अपने शासन को वैध बनाने के तरीके तलाशने की कोशिश की।

ऐसा ही एक विचार था– नस्लों के बीच सहयोग, जिसको कॉनकोर्डिया सोसाइटी (क्योवाकाई) जैसे संगठनों द्वारा प्रसारित किया गया। इस संस्था ने विभिन्न नस्ल के लोगों के बीच सहयोग की वकालत की, और यहाँ तक कि एक नये प्रकार के उपनिवेश विरोधी राज्य के लिए साम्राज्यवादी विरोधी तर्क का समर्थन किया। दुआरा इसे अखिल एशियनवाद की राजनैतिक विचारधारा की शुरुआत करने के रूप में देखते हैं, जिसे बाद में सरकार ने जापानी नेतृत्व में क्षेत्रीय संगठन बनाने के लिए संस्थाओं का निर्माण करके आगे बढ़ाया। इनमें एक ईस्ट एशियन लीग एसोसिएशन की स्थापना 1939 में इशिवारा कांजी द्वारा की गई थी। इशिवारा जापानी सेना में एक प्रभावशाली सेनानायक थे जो पश्चिम के खिलाफ 'अंतिम युद्ध' की वकालत करने के लिए उग्र बौद्ध तनाका चिगाकू के लेखन से प्रेरित थे। बाद में, सरकार द्वारा ईस्ट एशियन कम्यूनिटी और अंत में ग्रेटर ईस्ट एशियन कोप्रोसपेरिटी स्फियर (Great Asian Co-prosparity Sphare) जैसे अन्य संगठन बनाए गए।

एक पूर्वी एशियाई समुदाय के विचार में अनेक विभिन्नताएँ थी; कुछ नस्लीय, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक समानताओं पर आधारित थी। एक प्रमुख बुद्धिजीवी रोयामा मा सामिची (1895-1980) ने जापान और चीन के बीच सहयोग के लिए एक अलग तर्क दिया। उन्होंने जापान और चीन को जोड़ने के लिए नस्ल या संस्कृति का सहारा नहीं लिया, लेकिन तर्क दिया कि आर्थिक विकास और अंतर्राष्ट्रीय स्थिति से यह अनिवार्य था कि दोनों एक क्षेत्रीय गुट के रूप में सहयोग करते। दूसरों की तरह उनके विचार भी चीनियों के बीच समर्थन पाने में असफल रहे। रोयामा राष्ट्रीय आकांक्षाओं की शक्ति को समझने में विफल रहे और उन्होंने कभी भी जापानी उपनिवेशवाद का विरोध नहीं किया।

12.4 चीन और वैधता प्राप्त करने के जापानी साम्राज्य के प्रयास

चीन के खिलाफ जापान के युद्धों, 1894-1895 में और फिर 1937 में और मंचूरिया पर कब्जे से जापान के अजियाशुगी या एशियाईवाद के विरोधाभासों का पता चला, लेकिन जापान अपने साम्राज्य की वैधता की कोशिश करता रहा और इसे आगे बढ़ाता रहा। 1938 में रेजिंग एशिया (कोआ एजिया) संस्था की स्थापना की गई और एक नई व्यवस्था की घोषणा की गई। इस दिशा के अनुरूप नई संस्थाओं जैसे द ग्रेटर जापानीज लीग फॉर रेजिंग एशिया का गठन किया गया। सरकार के समर्थन ने इन संस्थाओं को आधिकारिक प्रवचन फैलाने में बहुत प्रभावशाली बना दिया।

मांचूकुओ में जापानियों ने अंतिम छिंग सम्राट पु वाई को राजगद्दी पर बैठाया, हालांकि उसके पास कोई सत्ता नहीं थी, लेकिन इससे यह संकेत मिला कि मांचू कुओ अपने स्वयं के अधिकार वाला एक राज्य था। चीन में उन्होंने स्थानीय सरदारों के साथ काम करने का प्रयास किया ताकि उनके शासन को वैधता प्राप्त हो। गुओमिनदांग तथा कम्युनिस्ट पार्टी ने उनका विरोध किया लेकिन कुछ चीनियों ने तर्क दिया कि वे जापान के साथ काम कर सकते हैं।

वांग जिंगवेई (1883-1944) एक गुओमिनदांग राजनीतिज्ञ थे जो सन यात्सेन के करीबी थे, वह एक ऐसे नेता के रूप में उभरे जिन्हें जापान के साथ काम करना लाभप्रद लगा। आज उनकी एक देशद्रोही के रूप में निंदा की जाती है। वांग गुओमिनदांग में एक प्रमुख व्यक्ति थे। उन्होंने सन यात्सेन के साथ एक-चौथाई सदी तक काम किया। सन यात्सेन की मृत्यु के बाद पार्टी में यह खींचतान चली की पार्टी का नेतृत्व कौन करेगा? पार्टी के नियंत्रण के लिए वांग ने जियांग जिशी (जियांग काईशेक) का विरोध किया लेकिन जियांग ने अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। वांग ने भले ही जियांग का विरोध किया था और उनके दृष्टिकोण से मतभेद रखते थे लेकिन वह गुओमिनदांग में बने रहे। जापानियों ने वांग को पार्टी में दरकिनार किये जाने का उपयोग अपने लाभ के लिए किया और 1937 में चीन-जापान युद्ध शुरू होने के बाद उन्होंने प्रधानमंत्री बनाने का प्रस्ताव रखा। वांग ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और वह अपनी मृत्यु तक उस सरकार का नेतृत्व करते रहे जिसका नियंत्रण जापानियों के हाथ में था। इसने उनकी प्रतिष्ठा को धूमिल कर दिया, भले ही वांग ने 1911 की क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उनके योगदानों को नज़रअंदाल कर दिया गया और उन्हें जापान के साथ सहयोग करने के लिए एक गद्दार कहा गया।

12.4.1 वांग जींगवेई और जियांग जिशी

वांग जींगवेई और जियांग जिशी में मतभेद थे। 1920 के दशक में वांग ने भले ही कम्युनिस्टों के विचारों का विरोध किया था लेकिन उन्होंने उनके साथ सहयोग भी किया।

जियांग जिशी ने कम्युनिस्टों का विरोध किया और उनके विरुद्ध उत्तरी अभियान चलाया और राजधानी को नानजिंग में स्थानांतरित कर लिया। वांग और वामपंथी गुओमिनदांग ने वुहान में एक वैकल्पिक राजधानी स्थापित की और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ नज़दीकी सम्बंधों में मिलकर काम किया, लेकिन जियांग का मुकाबला करने में असफल रहे। जियांग ने कम्युनिस्टों का नरसंहार कर श्वेत आतंक चलाया। कुछ समय के लिए वांग डरकर यूरोप भाग गया।

अन्य समूहों के साथ सहयोग करने के वांग के प्रयास विफल हो गये और उन्होंने 1931 में फिर से जियांग जिशी के साथ शांति स्थापित कर ली। वांग को पार्टी में महत्वपूर्ण पद दिए गये थे। जापान से लड़ने के सवाल पर वांग और जियांग जिशी के विचार अलग-अलग थे। जियांग को स्पष्ट था कि उसका प्रमुख लक्ष्य जापान से लड़ना था और वह ऐसा करने के लिए सोवियत संघ के साथ स्वेच्छा से सहयोग करने को तैयार थे। वांग ने सोचा कि जापान का विरोध करने के लिए चीन सैन्य रूप से बहुत कमज़ोर था। जापान ने सफलतापूर्वक आधुनिकीकरण कर लिया था और वह एक शक्तिशाली आर्थिक शक्ति था। वांग ने तर्क दिया कि मुख्य शत्रु पश्चिमी साम्राज्यवाद था और चीन को पश्चिमी साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए जापान के साथ सहयोगी होना चाहिए।

12.4.2 वांग जींगवेई का जापानी सेना के साथ सहयोग करना

वांग इंडो-चीन गये और जापानियों के समर्थन की तलाश के लिए जापानियों से बातचीत शुरू की। वह 1938 में शंघाई लौट आए और 1940 में उन्होंने चीन गणराज्य की पुनर्संगठित राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की। बाद में, उसी साल उन्होंने जापान के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किये जिसने जापानियों को उनके द्वारा पेश की गई कुख्यात इक्कीस माँगों के अनुरूप रियायतें प्रदान की गई। वांगजिंग वेई की सरकार एशियाई एकता, साम्यवाद विरोध और जियांग जिशी के विरोध पर आधारित थी। वांग, यूरोप में अपने आवास के दौरान, फासीवाद से प्रभावित हो गये थे और उन्होंने इतालवी और जर्मन फासीवादियों से दोस्ती कर ली थी। चीन लौटने के बाद भी वह उनके संपर्क में रहे।

12.4.3 क्या वांग जींगवेई देशद्रोही था?

जापानियों ने अपने नियंत्रण वाले क्षेत्रों पर सख्त नियंत्रण रखने की कोशिश की। जापानी पुलिस ने अपने सहयोगियों के साथ काम करके चीनियों के मध्य खुफिया जानकारी एकत्र करने और जो उनके लिए खतरा पैदा कर रहे थे उन पर सेंसर लगाने और उन्हें कैद करने का काम किया। वांग को हत्या के प्रयासों का सामना करना पड़ा क्योंकि वह जापान के विरुद्ध जन-प्रतिरोध के मुख्य बिंदु बन गये थे। 1944 में जापान में उनकी मृत्यु हो गई जहाँ वो चिकित्सा के लिए गये थे।

जापानियों के साथ सहयोग करने से वांग जिंगवेई को चीन का एक गद्दार माना गया और उनके पहले के कार्य भुला दिए गये। सन यात्सेन की समाधि के पास नानजिंग में उनके लिए एक भव्य मकबरा बनाया गया था, लेकिन जापान की पराजय के बाद जब जियांग जिशी ने नानजिंग पर कब्ज़ा कर लिया तब इस मकबरे को नष्ट कर दिया गया और उनके शरीर को जला दिया गया। अब वहाँ एक सरल संरचना यह दर्शाती है कि वांग चीनियों के प्रति गद्दार थे। चीनी कल्पना में, चीन की मुख्य भूमि और ताइवान में वांग एक गद्दार का प्रयाय बन गया है।

अब इतिहासकार इस विचार पर सवाल उठा रहे हैं और तर्क दे रहे हैं कि वांग को सिर्फ एक देशद्रोही के रूप में खारिज नहीं किया जाना चाहिए। इतिहासकार टॉरस्टन वैबर का तर्क है कि वांग का अखिल एशियावाद न तो केवल प्रचार के उद्देश्यों के लिए एक

आविष्कार था और न ही सिर्फ जापानी युद्धकालीन बयानबाज़ी को अपनाने का एक प्रयास। यह सन यात्सेन की विरासत के दावे का उपयोग करके राजनैतिक वैधता स्थापित करने का एक प्रयास था। वांग ने सन यात्सेन के एशियावाद विचार से ग्रहण किया हालांकि कम्युनिस्टों और राष्ट्रवादियों पर हमला करने और जापान के अखिल एशियावाद का उपयोग करने में सन यात्सेन की विरासत का दावा करते हुए यह संतुलन कार्य विफल हो गया।

वांग ने अपने राजनीतिक कार्यक्रम का निर्माण शांति, साम्यवाद विरोध और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के विचार पर किया और सन यात्सेन के मकबरे पर जाकर उनके आदर्शों को अपने कृत्यों से जोड़ा।

वांग जिंगवेई ने अपनी सोच जापानी विचारों की बजाय सन यात्सेन के एशियावाद के विचार पर आधारित की। वांग ने तर्क दिया, जैसा कि सन यात्सेन ने भी दिया था कि अपने अंतरों और समस्याओं के बावजूद इतिहास और नस्ल, संस्कृति और भूगोल चीन और जापान को एक साथ जोड़ती है। उन्होंने जोर देकर कहा कि दोनों को एक साथ काम करना चाहिए और दोनों को एक महान एशियावाद के लिए काम करना चाहिए। वांग ने तीन सिद्धांतों की भी वकालत की जोकि सन यात्सेन की मूल विचार थे।

बोध प्रश्न 1

1) अखिल एशियावाद शब्द से आप क्या समझते हैं? जापान ने अपने शाही हितों के लिए इसका इस्तेमाल कैसे किया।

....

....

....

....

....

2) चीनी-जापानी युद्ध में वांग जिंगवेई की भूमिका मूल्यांकन करें।

....

....

....

....

....

12.5 जापान का दक्षिण-पूर्व एशिया और भारत में आगे बढ़ना

1941 तक, जैसे-जैसे युद्ध आगे बढ़ता गया, वस्तुओं की कमी बढ़ती गई और बढ़ती कीमतों और मुद्रास्फीति ने बढ़ती मज़दूरी को पीछे छोड़ दिया। बुनियादी वस्तुओं का खरीदना मुश्किल हो गया या उनकी गुणवत्ता भी खराब हो गई। व्यापक चिन्ता का एक संकेत चांदी के सिक्कों का गायब होना था। जर्मनी विजय करता हुआ आगे बढ़ रहा था और उन्होंने रूस के खिलाफ ऑपरेशन बारबरोसा प्रारम्भ किया और 7 दिसंबर, 1941 को जापानियों ने पर्लहार्बर पर बमबारी की। इससे भारत के लिए युद्ध का स्वरूप बदल गया।

जापानी आक्रमण का खतरा बढ़ गया क्योंकि जापानी सेनाओं ने मलाया प्रायद्वीप पर कब्ज़ा कर लिया, ब्रिटिश जहाजों को नष्ट कर दिया, बर्मा, हाँगकांग पर आक्रमण किया और 15 फरवरी, 1942 को सिंगापुर को कब्ज़े में ले लिया। अंग्रेज़ों को पूर्वी भारत में जापानियों के आने की आशंका थी।

एक जापानी आक्रमण का भय कोलकत्ता, मुंबई और मद्रास में अंग्रेज़ों के बीच फैल गया। एक पुलिस रिपोर्ट में कहा गया है, ''मलाया, सिंगापुर और बर्मा की आपदा ने जापानियों को इस तरह के खतरे में बदल दिया जो पहले क्षितिज पर था और अब एक ऐसा शत्रु था जो द्वार पर हमला कर रहा था।'' बर्मा में दस लाख भारतीय थे और इसलिए पूरे देश में समाचार जल्दी और व्यापक रूप से पहुँच रहे थे। अप्रवासी आबादी राजस्व का एक प्रमुख स्रोत था। कुछ क्षेत्रों में भेजा गया धन भू-राजस्व से एकत्र राशि से भी अधिक था। यह आने वाला पैसा संकुचित होने लगा और शरणार्थी वापस लौटने लगे।

अंग्रेज़ों के पीछे हटने की खबरें और थके हुए और घायल सैनिकों की खबरें उत्साह भंग करने वाली थी। शहरों पर आक्रमण की अफवाहें, उनके जापानी हाथों में चले जाने की अफवाहें और जापानियों से गुप्त सौदेबाजी की अफवाहों से लोग ग्रामीण इलाकों में भागने लगे। भय के इस माहौल में निवेश में गिरावट आई और युद्ध के लिए योगदान में वृद्धि के दबाव के बावजूद, लोगों ने चांदी के सिक्कों की जमाखोरी शुरू कर दी। वास्तव में प्रभाव सीमित था। कुछ हवाई छापें और 484 मौतें, लेकिन ब्रिटिश शासन की छवि को गहरा धक्का लगा। इतिहासकार इंदीवर कामतेकर लिखते हैं 'राज्य की विश्वसनीयता' सवालों के घेरे में आ गई।

12.5.1 बर्मी राष्ट्रवाद और जापानी समर्थन

बर्मी नेता आंग सान (1915-1947), एक राष्ट्रवादी नेता, गुओमिनदांग का समर्थन पाने के लिए चीन गये थे लेकिन जापानियों द्वारा पकड़े गये और जापान जाने के लिए आश्वस्त हो गये। जापानी सरकार ने उनकी मदद की और उन्हें और अन्य को सैन्य प्रशिक्षण दिया। 1941 में जापानी मदद से उन्होंने बैंकाक में उन्होंने बर्मा इंडीपेंडेंस आर्मी की स्थापना की। 1942 में जापानियों ने रंगून पर कब्ज़ा कर लिया और अपने नियंत्रण में एक बर्मा की सरकार की स्थापना की। 1943 में बर्मा को बा मा (1893-1977) के तहत् एक स्वतंत्र राज्य घोषित किया गया और आंग सान युद्ध मंत्री बने। हालांकि वास्तविक शक्ति जापानी सैन्य प्रशासन के पास रही। आंग सान का धीरे-धीरे मोहभंग हो रहा था, उनका कहना था कि अगर अंग्रेज़ हमारा खून चूसते थे, तो जापानी हमारी हड्डियाँ तोड़ते हैं। उन्होंने मदद के लिए अंग्रेज़ों की ओर रुख किया। बाद में, वह अंग्रेज़ों से बर्मा की स्वतंत्रता पर बातचीत करने में मदद करेंगे लेकिन 1947 में उनकी हत्या कर दी गई।

12.5.2 जापान द्वारा एशिया में अपनी नीतियों को संयमित करना

1943 में, जापान ने ग्रेटर ईस्ट एशियाटिक नेशनन्स् की असेम्बली की एक बैठक आयोजित की। इसने एक ऐसे बिंदु को चिह्नित किया जहाँ जापान ने एशिया के नेता के रूप में अपनी भूमिका को संयमित करने का प्रयास किया ताकि युद्ध को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाया जा सके और ग्रेटर ईस्ट एश्यिा को-प्रोस्पेरिटी क्षेत्र का पुनर्निर्माण किया जा सके। जापान के आगे बढ़ने को रोक दिया गया था और उन्हें वापस धकेला जा रहा था, संसाधनों तक उनकी पहुँच कम हो गयी थी और मित्र राष्ट्रों ने एक अटलांटिक चार्टर को प्रकाशित किया था। जिसमें इसकी एक रूपरेखा थी कि वे युद्ध के बाद विश्व व्यवस्था का पुनर्निर्माण कैसे करेंगे। जापान को इसका विरोध करने और स्वयं के एजेंडे का रेखांकित करने की आवश्यकता थी।

1943 में उन्होंने ग्रेटर एशियाटिक दिशा-निर्देश जारी किये। यह उनके नियंत्रण में नेताओं के कुछ अधिकार स्वीकार करते हैं, जैसा उन्होंने वांग सरकार के संदर्भ में किया। उन्होंने अपने अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकारों को समाप्त कर दिया, फिलीपिन्स और बर्मा की स्वतंत्रता को मान्यता दी और कुछ क्षेत्रों को थाईलैंड और मलेय राज्यों को वापस कर दिया। मुक्त भारत की अंतरिम सरकार को जापान द्वारा मान्यता प्रदान की गई और चूँकि भारतीयों के पास कोई क्षेत्र नहीं था, जनरल तोजो ने घोषणा की कि अण्डमान निकोबार समूह को उन्हें स्थानांतरित कर दिया जाएगा।

12.6 जापान और इंडियन नेशनल आर्मी (आजाद हिंद फौज)

यह इस संदर्भ में है कि भारतीय स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघर्ष को जापानी समर्थन मिला। भारत कभी भी ग्रेटर को-प्रोसपेरिटी क्षेत्र की केंद्रीय संकल्पना का भाग नहीं था। जापानी चाहते थे कि अंग्रेज़ों को हटा दिया जाए और इसलिए उन्होंने भारतीय उपनिवेश विरोधी समूहों का समर्थन किया।

सुभाषचंद्र बोस की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में एक लम्बी जीवन-यात्रा थी। बोस ने भारतीय सिविल सेवा के लिए अहर्त्ता प्राप्त की लेकिन 1921 में इसमें सफल होने पर त्यागपत्र दे दिया। भारतीय स्वतंत्रता के लिए काम करने की उनकी इच्छा ने उन्हें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। 1940 के दशक में जब फासीवाद विश्व स्तर पर और अधिक शक्तिशाली हो गया तो युद्ध के खतरे ने कई लोगों ने ब्रिटिश के साथ मिलकर फासीवाद से लड़ने और स्वतंत्रता की माँगों को स्थगित करने में सहमति जताई। बोस ने फैसला किया कि यह ब्रिटिश साम्राज्य पर हमला करने का समय था। वह बचकर पेशावर भाग गये और सोवियत सहायता प्राप्त करने में असफल रहने के बाद, वह 1941 में जर्मन सहायता के लिए बर्लिन पहुँच गये। बोस ने तर्क दिया कि भारतीय क्रांति की योजना में धुरी शक्तियाँ भारत की मदद कर सकती थी। देश इसके लिए तैयार था।

जर्मन बहुत मददगार नहीं थे और बोस को इंडिया इंडिपेंडेंस् लीग द्वारा बैकांक में नेतृत्व संभालने के लिए आमंत्रित किया गया। वह वहाँ 1942 में पहुँचे और उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय सेना (आई.एन.ए.) को नेतृत्व संभाला और आजाद हिंद सरकार के गठन की घोषणा की। 1943 में जापानियों ने इसे मान्यता दे दी। आई.एन.ए. या आजाद हिंद फौज के कमांडर के रूप में बोस ने 1943 की शुरुआत में बर्मा में अपना मुख्यालय स्थापित किया और आई.एन.ए. की डिवीजंस को मलाया से बर्मा लाया गया ताकि वे मणिपुर में जापानी आक्रमण की मदद कर सकें।

12.6.1 आई.एन.ए. द्वारा रंगून में मुख्यालय की स्थापना

बर्मा में इस क्षेत्र की सबसे बड़ी भारतीय आबादी थी इसलिए इसने सम्भावित रंगरूटों और समर्थकों का एक विशाल समूह प्रदान किया। अनेक जापान के आगे बढ़ने से भाग गये थे, लेकिन एक बड़ी आबादी अभी भी वहाँ थी। बर्मी भारतीय उपस्थिति से अप्रसन्न होने लगे थे क्योंकि भारतीय व्यापार और भूमि के बड़े भाग को नियंत्रित करते थे और प्रमुख साहूकार थे। जापानियों ने भारतीयों को बर्मीयों की आपत्तियों के बावजूद सम्पत्ति पर नियंत्रण बनाए रखने की अनुमति दी।

दक्षिण-पूर्व एशिया में अनुमानित 20 लाख भारतीय थे। बोस आई.एन.ए. को स्वतंत्र बनाने के लिए समुदाय से पर्याप्त धन जुटाने में कामयाब रहे। 1944 में उन्होंने अकेले मलाया में 15 मिलियन स्टरेट डॉलर जुटाए। उन्होंने न केवल जर्मन ऋण का भुगतान किया बल्कि

वह जापान पर भी पूरी तरह से निर्भर नहीं थे। इस वित्तीय शक्ति ने उन्हें आई.एन.ए. की सैन्य शक्ति को 12000 से बढ़ाकर लगभग 40,000 करने में मदद मिली।

बोस स्वतंत्रता के आंदोलन के प्रसिद्ध नेता के रूप में अपने करिश्में और कद के कारण सैनिकों की भर्ती करने में सफल रहे। बोस भारतीय समुदाय से वित्तीय सहायता जुटाने में बेहद सफल रहे। महत्वपूर्ण बात यह थी कि बोस ने एक महिला इकाई की स्थापना की और समूह को अधिक सशक्त बनाने और साम्प्रदायिक मतभेदों को कम करने के लिए हिंदुस्तानी भाषा का इस्तेमाल किया।

उन्होंने फासीवादी क्रार्यक्रम का कितना समर्थन किया? बोस की रुचि उनका समर्थन पाने में थी और जरूरी नहीं उनके विचारों में भी। 1937 में उन्होंने चीन में जापानी नीतियों के खिलाफ और साथ ही साथ इस विचार के खिलाफ लिखा था कि मंचूरिया 'स्वायत्त' था।

जापानी ब्रिटिश साम्राज्य को डराने के लिए भारतीय स्वतंत्रता का समर्थन करने में खुश थे। भारत का औपनिवेशीकरण ग्रेटर ईस्ट एशिया को-प्रोस्पेरिटी क्षेत्र का भाग नहीं था। आई. एन. ए. अपने उद्देश्य में असफल रहा और संसाधनों की कमी और बीमारियों के कारण पराजित हुआ। लेकिन फिर भी भारत में लोगों पर और ब्रिटिश अधिकारियों पर इसका भारी प्रभाव पड़ा।

12.6.2 आई.एन.ए. तथा लालकिले के मुकदमें

1945-46 में, जापान की हार के बाद, पकड़े गये आई.एन.ए. के सैनिकों पर दिल्ली पर मुकद्दमा चलाया गया। उनका बचाव कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रमुख वकीलों ने किया। मुकदमें ने सभी समुदायों को एक साथ लाकर बहुत प्रभाव डाला और सशस्त्र बलों में सरकार समर्थकों ने भी विद्रोह करना शुरू कर दिया, उदाहरण के लिए, 1946 में रॉयल इंडियन नेवी में। ब्रिटिश वायसराय ने इस स्थिति को ज्वालामुखी के कगार के रूप में वर्णित किया। मुकदमों के प्रभाव का ब्रिटिश भय इतना सशक्त था कि बी.बी.सी. को आई.एन.ए. की कहानी को प्रसारित करने की अनुमति नहीं दी गई क्योंकि इसे भड़काऊ के रूप में देखा गया था। यह गोरे आदमी की प्रतिष्ठा के लिए एक आघात था।

12.7 इंडोनेशिया पर जापानी कब्ज़ा

जैसा जापानी उत्तरी चीन में युद्ध में उलझे हुए थे इसलिए पेट्रोलियम जैसे कच्चे माल की ज़रूरत से प्रेरित होकर उन्होंने इंडोनेशिया पर कब्ज़ा कर लिया। दक्षिण-पूर्व एशिया में वे कच्चे माल की आपूर्ति के लिए डच और जर्मन के साथ बातचीत कर रहे थे। लेकिन अंत में डच लोगों ने जापानी सम्पत्ति पर कब्ज़ा कर लिया और जापान को तेल के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया जैसा कि यू.एस. ने पहले ही किया हुआ था। संयुक्त राज्य अमेरिका उस समय दुनिया के पचास प्रतिशत से अधिक तेल की आपूर्ति करता था और इंडोनेशिया 25% की आपूर्ति करता था। इसी कारण से इंडोनेशिया जापानियों के लिए इतना महत्वपूर्ण था।

1941 में जापानियों ने सोवियत संघ के साथ एक गैर-आक्रमण समझौते पर आक्रमण किये। इससे उनकी मांचू कुओ की रक्षा हुई और उन्होंने पहले से ही फ्रांसिसी इण्डो-चीन पर नियंत्रण कर लिया था। अब वे मलाया और इण्डोनेशिया पर अपना कब्ज़ा जमा सकते थे। जापानियों ने उत्कृष्ट ब्रिटिश सेना और डच, आस्ट्रेलियाई और संयुक्त राज्य की संयुक्त सेनाओं को हराकर अभूतपूर्व सफलता हासिल की। उन्होंने अपने इस कदम को एशिया के हितों के लिए उठाए हुए कदम के रूप में प्रक्षेपित किया। जापानियों ने घोषणा की कि वे

पश्चिमी उपनिवेशवाद से लड़ने के लिए एशियाई देशों का नेतृत्व करेंगे और उन्हें पारस्परिक लाभदायक और गैर-शोषण सम्बंधों में एकजुट करेंगे।

पश्चिमी साम्राज्यवाद से लड़ने के आह्वाहन की इण्डोनेशिया में एक मज़बूत अपील थी जहाँ डच स्थानीय लोगों को एक अत्यधिक दमनकारी व्यवस्था के तहत रखकर क्रूर शासक साबित हो रहे थे। पश्चिमी शक्तियों की जापान द्वारा पराजय विशेष तौर पर ब्रिटिश और डचों की हार का गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश हार ने भारत में हलचल मचा दी और इंडोनेशियाई लोगों ने देखा डच श्रेष्ठता एक मिथक था।

12.7.1 जापानी आधिपत्य : अधिकारियों द्वारा स्थानीय संस्कृति को प्रोत्साहन

जापानियों ने डच भाषा का उपयोग समाप्त कर दिया और मलेय और जापानी का उपयोग किया। लेकिन भाषा इंडोनेशिया को भी बढ़ावा दिया। जापानियों ने इंडोनेशियाई विषयों को साहित्य में प्रोत्साहन दिया और डच शासन के खिलाफ लेखन को प्रोत्साहित किया, यहाँ तक कि डच शासन के प्रतीकों के विनाश को प्रायोजित किया जैसे अग्रणी डच औपनिवेशिक व्यक्तियों की मूर्तियों को कोरिया या ताइवान के विपरीत उन्होंने स्थानीय संस्कृति को समाप्त करने के बजाय उसको बढ़ावा दिया। उन्होंने सामान्यतः स्थानीय अभिजात्य लोगों के साथ सहयोग किया। हालांकि, उन्होंने आमतौर पर दक्षिण-पूर्व एशिया में फैले चीनी समुदायों के साथ स्थानीय आबादी से बदतर सलूक किया।

जापानियों को प्रारम्भ में समस्याओं का सामना करना पड़ा क्योंकि मुस्लिम इंडोनेशियाई लोगों ने जापानी शाही महल की ओर झुकने की प्रथा का पालन करने में इंकार कर दिया था, लेकिन धीरे-धीरे जापानियों ने उन धार्मिक नेताओं का उपयोग करते हुए जिन्हें नज़रअंदाल कर दिया गया था, वफादार संगठनों का निर्माण करने में सफल रहे। वे सुकार्नो (1901-1970) जैसे जन-समर्थन वाले राजनेताओं का समर्थन प्राप्त करने में सफल रहे, जो स्वतंत्रत इंडोनेशिया के पहले राष्ट्रपति बने और मोहम्मद हट्टा (1902-1980) जो उनके उप-राष्ट्रपति थे। दोनों जापानी कब्ज़े के दौरान महत्वपूर्ण नेता थे, जिनकी जनता अनुगामी थी और जिनका सहयोग जापानियों के लिए महत्वपूर्ण था।

12.7.2 जापानियों की मुक्तिदाता के रूप में इंडोनेशियावासियों की हताशा

हालांकि, स्थानीय लोगों ने जल्द ही शुरुआत में जो भी उम्मीद थी उसे खो दिया। जापानी डच के समान क्रूर शोषण करने वाले निकले। जापानियों ने जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को, विभिन्न अनुमानों के अनुसार 4-10 मिलियन लोगों को, श्रम के लिए लामबंद किया। इस श्रम शक्ति का अधिकांश भाग जावा में रक्षा प्रतिष्ठानों पर काम करने के लिए रखा गया था लेकिन अन्य द्वीपों पर भी भेजा गया था।

जापानी शासन के साथ मोहभंग का वर्णन प्रमुख इंडोनेशियाई उपन्यासकार प्रोमोएदया अनंत तोयर (1925-2006) ने किया है। प्रोमोएदया ने जापानियों के लिए काम किया और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान इंडोनेशिया पर कब्ज़ा करने के दौरान उन्हें करीब से देखा। अपने संस्मरणों, द म्यूट्स स्लोलोक्वी में वह लिखते हैं,

''मैं और कुछ नहीं जापानियों की प्रशंसा करता हूँ क्योंकि उन्होंने सदियों पुरानी जंजीरों, जिसमें दक्षिण-पूर्व एशिया को फ्रांसिसी, ब्रिटिश और डच ने बाँधा हुआ था, उन्हें तोड़ दिया।

जैसे कि जापान के महान राज्य दाई निपोन ताईकोकु, वास्तव में एक दिव्य शक्ति था और जैसे इसने एक श्वास में अतीत को उखाड़ फेंका। मैंने अपनी खुद की आँखों से देखा था कि कैसे झण भर में पश्चिमी लोगों को मेरी जन्मभूमि में जो एक महान कुलीनता, सत्ता और सम्मान दिया जाता था, वह गायब हो गया।''

''अपने अनेक इंडोनेशियाई साथियों के साथ शुरू में मैंने भी औपनिवेशीकरण से आज़ादी की उम्मीदें लगाई थी जो हमारे 'बड़े भाई' हमारे लिए लाए थे। लेकिन अन्य लोगों के साथ मेरी भावनाएँ भी घृणा में बदल गई जब मुझे यह मान, ज्ञान और समझ आई कि जापान भी एक अन्य उपनिवेशवादी था जो पहले के लोगों की तुलना में ज्यादा लालची और कम सभ्य था। चुउ सांगी-इन में मैंने खुद अपने नोट्स जापानी स्वतंत्रता के वायदे, बाद के दिन में लिखे थे, एक ऐसा दिन जो आने में बहुत समय लगा रहा था। जापानियों ने स्वतंत्रता का वादा किया लेकिन उन्होंने इंडोनेशिया को विभाजित किया : जावा और मदुरा को जापानी सेना के अधीन, सुमात्रा, लाली और अन्य द्वीपों को नौ सेना के अधीन इस तरह रखा जैसा कि वे विदेशी देश थे। केवल एक रेडियो स्टेशन को प्रसारण की अनुमति थी, निजी स्वामित्व वाले सेटो को बंद कर दिया गया था, और उनकी आवृत्तियों को उस एक स्टेशन पर सेट कर दिया गया था और सभी समाचार-पत्रों को बंद कर दिया गया था। जापानियों ने इंडोनेशियाइयों के साथ इस तरह का सलूक किया मानों वह एक निचली नस्ल नहीं बल्कि जानवरों का एक झुंड थे जिनका स्वामित्व उनका था और जिनके साथ वह जैसा चाहे बर्ताव कर सकते थे। उन्होंने राष्ट्रवादियों, अभिजात्य जनों और धार्मिक नेताओं को एकजुट करने का प्रयास किया, लेकिन सभी सत्ता अपने हाथों में रखी।'' (*द म्यूट सोलीलोक्वी,* पृ.पृ. 181-182)

12.8 सारांश

इस इकाई में हमने देखा कि सह-समृद्धि क्षेत्र बनाने के बारे में जापानियों के विचारों को शुरू में समर्थन मिला था और स्थानीय आबादी उन्हें मुक्तिदाता के रूप में देखती थी। यह दक्षिण-पूर्व एशिया के कई भागों के लिए सच था जहाँ जापानियों ने शुरू में स्थानीय संस्कृतियों पर हमला नहीं करने की सावधानी बरती। लेकिन कोरिया में उन्होंने कोरियाई संस्कृति और भाषा को खत्म करने की कोशिश की। उन्होंने उन्हें अपना नाम तक बदलने को विवश किया। चीन में उनके दमनकारी उपायों को व्यापक प्रतिरोध का सामना करना पड़ा और कुछ वांग जिंगवेई जैसे जिन्होंने जापानियों को सहयोगी के रूप में देखा, उनका भी मोहभंग हो गया था। स्थानीय आबादी उन लोगों के खिलाफ भी हो गई जिन्होंने जापानियों के साथ सहयोग किया था। इंडोनेशियाई उपन्यासकार प्रोमोइदाया ने जापानी कब्ज़े के अनुभव को निष्कर्ष रूप में कहा कि लोगों ने उनमें पहले अपनी आशाएँ देखी थी लेकिन जापानी पहले के डच उपनिवेशवादियों की तरह क्रूर और दमनकारी निकले। कुछ सहयोगी जैसे आंग सान और सुभाषचंद्र बोस उनको लगता था कि जापानियों के साथ समस्याएँ तो हैं लेकिन उन्होंने अपना लक्ष्य हासिल करने के लिए उनके साथ सहयोग किया, जो राष्ट्रमुक्ति था। आंग सान को अंग्रेज़ों के पास वापस लौटकर बातचीत करनी पड़ी जब उन्होंने जापानियों से उम्मीद खो दी थी। अखिल एशियावाद की बयानबाज़ी वास्तव में कभी साम्राज्य की माँग को बस में नहीं कर पाई। जिन राजनीतिक नेताओं ने जापानियों के साथ काम किया उनके अलग-अलग प्रयोजन थे लेकिन कई बार वे केवल राजनैतिक आवश्यकता से प्रेरित हुए बल्कि उन्होंने पश्चिमी साम्राज्यवाद को एक ऐसे खतरे के रूप में देखा जिसका सामना उन्हें स्वतंत्र रूप से विकसित होने से पहले करना था।

बोध प्रश्न 2

1) इंडियन नेशनल आर्मी का जापानी सैन्य सत्ता के साथ सम्बंध का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

2) इंडोनेशिया में जापानियों के प्रारम्भ में सफल होने के क्या कारण थे?

....

....

....

....

....

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों 1

1) भाग 12.2 और उपभाग 12.2.2 देखें।

2) उपभाग 12.4.1, 12.4.2 और 12.4.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 12.6 और उसके उपभाग देखें।

2) भाग 12.7 और उसके उपभाग देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY